International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 1, January 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

गीता मे प्रतिपादित ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का समन्वय

बृजेश कुमार सिंह
शोधच्छात्र (संस्कृत विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भगवद्गीता भगवान्कृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र युद्ध में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। यह वेदान्त दर्शन का सार है और अत्यन्त समादरणीय ग्रन्थ है। यह गोपालनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है जिसे सुधीजन पीते हैं।[1] यह महाभारत के भीष्म पर्व से लिया गया है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी प्रशंसा करते हुए इसे 'मानव धर्म का ग्रन्थ' बताया है। इसकी तुलना कामधेनु और कल्पवृक्ष से की गयी है। महात्मा गाँधी ने गीता को जगन्माता बताया है जिसके द्वार सदा सबके लिए खुले हैं। श्रीमती एनी बेसेन्ट के अनुसार गीता साधक को संन्यास के उस निम्न स्तर से जहाँ पदार्थों का तथा कर्मों का त्याग किया जाता है निष्काम कर्म योग के उस उच्च स्तर पर ले जाती है जहाँ योगी समाधिस्थ होते हुए भी शरीर और मन से लोककल्याण के लिए कार्य करते हैं।

गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का विलक्षण समन्वय हुआ है जो गीता के गौरव का प्रतीक है। ध्यानमार्ग साधना का मार्ग है जो ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों में उपादेय है। ध्यान मानसी क्रिया होने से कर्म से सम्बद्ध है; उपासना भगवान् का ध्यान या स्मृति होने से भक्ति से सम्बद्ध है; और चित्त की एकाग्रता द्वारा वृत्तियों के समाधि में विलीन होने पर निर्विकल्प ज्ञान का प्रकाशित होना ध्यान का लक्ष्य है। गीता में योग शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और योग में ध्यान, ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। योग में दुःख से आत्यन्तिक वियोग और अखण्ड आनन्द से आत्यन्तिक संयोग होता है। योग धारणा–ध्यान–समाधि है (ध्यानयोग); योग स्थितप्रज्ञ[2] की द्वन्द्वातीत ब्राह्मी स्थिति है (ज्ञानयोग); योग निष्काम कर्म है, कर्मकौशल अर्थात् कामनारहित कर्म है (कर्मयोग)[3]; योग भक्ति द्वारा भगवत्–तत्त्व का सम्यक् ज्ञान और भवगत्–प्रवेश है (भक्तियोग)[4]। योगी द्वन्द्वातीत है; शीत–ऊष्ण, सुख–दुःख, मान–अपमान आदि में अविचल है; ज्ञान–विज्ञानतृप्तात्मा है; समदृष्टि और समबुद्धि है।[5] जैसे वायुरहित स्थान में दीपक की लौ स्थिर रहती है, वैसे ही योगी का चित्त स्थिर रहता है।[6]

योगी का लक्ष्य अपरोक्षानुभूति द्वारा आत्मसाक्षात्कार है, जो ज्ञान बिना सम्भव नहीं है। भगवान् अपने भक्तों पर कृपा करके ज्ञानयोग प्रदान करते हैं, जिससे वे उन्हें पा सकें।[7] ज्ञान के अभाव में योग शारीरिक और मानसिक व्यायाम मात्र है। इन्द्रियों का विषयवासनाओं से अलग या निवृत्त होने का एक ही मार्ग है 'आत्मज्ञान'।[8] जिस प्रकार सुसमिद्ध अग्नि ईंधन को जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार सुसमिद्ध ज्ञानाग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है।[9] संसार–सागर को ज्ञान–यान से ही पार किया जा सकता है। कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में होती है।[10] ज्ञान से ही परम शान्ति या आनन्द

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

मिलता है।[11] ज्ञान के समान पवित्र अन्य कुछ नहीं है।[12] भक्तों में ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ हैं।[13] भगवान् कृष्ण ने ज्ञानी को अपना आत्मा कहा है।[14]

गीता के कर्मयोग का सम्पादन ज्ञानी द्वारा ही हो सकता है क्योंकि देहधारी प्राणी के लिये कर्मों का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है।[15] प्रकृति के सत्वरजस्तमोगुण सब प्राणियों को विवश करके कर्म कराते हैं।यह सारा लोक कर्म से बँधा है।[16] गीता में कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति का अद्भुत समन्वय किया गया है। गीता कर्म का निषेध नहीं करती; कर्म में फलासक्ति या कामना का निषेध करती है। गीता का कर्मयोग 'नैष्कर्म्य' (कर्म–निषेध) नहीं है, अपितु 'निष्काम कर्म' (कामनारहित कर्म; कामना निषेध) है। 'संन्यास' का अर्थ कर्म का त्याग नहीं है, किन्तु कामना का त्याग है त्याग का अर्थ कर्म का त्याग नहीं, अपितु कर्मफल का त्याग है।[17] गीता की सुप्रसिद्ध उक्ति है– तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म–फल में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं; अतः तुम कर्म–फल की कामना या फलासक्ति मत करो, और न ही तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म न करने में हो।[18]

यहाँ पर आपत्ति उठायी जाती है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बिना फल की इच्छा के कोई कर्म नहीं किया जाता। बिना किसी प्रयोजन के तो मन्दपुरुष भी कर्म में प्रवृत्त नहीं होता।[19] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सही हो सकता है। इसीलिये गीता का निष्काम कर्म ज्ञानी के लिये है, साधारणजन के लिए नहीं। गीता का निष्काम कर्म ज्ञान और भक्ति दोनों से अनप्राणित है। प्रारम्भ में यदि कर्म के लिये कामना आवश्यक ही हो, तो समस्त लौकिक कामनाओं का त्याग करके साधकों को केवल आध्यात्मिक उन्नति की कामना से कार्य करने चाहिए। भगवत्प्रीति के लिये भगवदर्पण बुद्धि से कर्म करने से आध्यात्मिक उन्नति होती है और कर्मों द्वारा बन्धन नहीं होता, जैसे पद्म–पत्र जल में लिप्त नहीं होता।[20]

गीता ज्ञान का सार भक्ति है; भक्ति गीता का हृदय है। गीता के उपदेश का प्रारम्भ प्रपत्ति या शरणागति से होता है। गीता के मध्य में भी नवें अध्याय में भक्ति को 'राजविद्या' और राजगुह्ययोग बताकर शरणागति (मत्परायणः) की महिमा प्रतिष्ठित की गयी है।[21] भक्ति का अर्थ 'उपासना' है। उपासना का अर्थ है भगवान् का निरन्तर ध्यान, भगवान् का तैलधारावत् निरन्तर स्मरण। नाम–जप से स्मरण पुष्ट होता है। निरन्तर स्मरण से भगवान् प्रसन्न होकर अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। अखण्डचिदानन्द की अपरोक्षानुभूति में भक्त का भगवान् से एकीभाव हो जाता है। इस प्रकार पराभक्ति और परज्ञान में कोई भेद नहीं रहता। गीता में बार–बार भक्ति और ज्ञान की एकता को प्रतिपादित किया गया है।

अतः गीता का भक्तियोग ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। परा भक्ति, पर ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक ही हैं, क्योंकि तीनों का अर्थ है– निर्विकल्पक अपरोक्ष आत्मानुभति। भक्ति, ज्ञान और कर्म का भेद लौकिक व्यवहार में ही है, क्योंकि अपनी चरम अवस्था में ये सभी अपरोक्षानुभूति में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार गीता में इनका समन्वय करके साधना मार्ग को भी सरल, सुबोध और सुगम बना दिया गया है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उनके शरण में जाने पर बार–बार इस प्रकार आश्वासन दिये गये हैं– 'मेरे भक्तों का कभी नाश नहीं होता।'[22] कल्याणकर्म करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।[23] यदि कोई दुराचारी भी निश्छल रूप से मेरा भजन करने लगे, तो उसे साधु ही मानना चाहिये क्योंकि वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है।[24] इस अनित्य और सुखरहित लोक में मेरा भजन करना चाहिए।[25] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गीता में ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का विलक्षण समन्वय हुआ है जिसकी मानव जीवन के लिये महती उपयोगिता है।

सन्दर्भ

1. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः
   पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।
2. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
   आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। गीता 2–55
3. योगः कर्मसु कौशलम्। गीत, 2–50
4. गीता, 11–54; 18–55; 8–22
5. गीता, 6–7,8; समत्वं योग उच्यते।
6. गीता, 6–19
7. गीता, 10–10 ददामि बुद्धियोगं तं येन ममामुपयान्ति ते।
8. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
   रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। गीता, 2–59
9. गीता, 4–37, ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरूते तथा।
10. गीता, 4–36 , 33
11. गीता, 4–39, ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिपचिरेणाधिगच्छति।
12. गीता, 4–38, नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
13. गीता, 7–16,17
14. गीता, 7–18, ज्ञानी त्वात्मैव में मतम्।
15 गीता, 18–11, नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
16. गीता, 3–5, 9, लाकोऽयं कर्मबन्धनः।
17. गीता, 18–2
18 गीता, 2–47, कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।
19. प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।
20. लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा। गीता 5–10
21. गीता, 9–34
22. न मे भक्तः प्रणश्यति, गीता, 9–31
23. गीता, 6–40
24. गीता, 9–30, 31
25 गीता, 9–33